**ओ३म्**

**‘प्रमुख वैश्विक संस्था आर्यसमाज की स्थापना का मुख्य**

**उद्देश्य व इसके उपयोगी राष्ट्रहितकारी कार्य’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

आर्य समाज वेदप्रचार का आन्दोलन है जो संसार में भूत और भविष्य के सभी आन्दोलनों से सर्वश्रेष्ठ एवं महान है। वेद प्रचार में श्रेष्ठता व महानता का क्या कारण है? यह जानने के लिए वेद को व्यापक रूप से जानना आवश्यक है। वेद का साधारण भाषा में अर्थ ज्ञान होता है। इस दृष्टि से वेद प्रचार का अर्थ ज्ञान का प्रचार करना है और वस्तुतः वेद प्रचार का यही उद्देश्य है। मनुस्मृति में भगवान मनु जी ने बताया है कि संसार में ज्ञान अमृत के तुल्य है। ज्ञान के दान से बढ़कर संसार में कोई दान नहीं है। अमृत कोई भौतिक पेय नहीं है अपितु यह मृत्यु को पराजित कर सुदीर्घ अवधि 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्षों तक जन्म मरण के दुःखों से मुक्त रहकर ईश्वर के आनन्दपूर्ण सान्निध्य का पूर्णता से अनुभव करते हुए इस ब्रह्माण्ड में विचरण करने को कहते हैं। इसे विस्तार से जानने के लिए ऋषि दयानन्द लिखित सत्यार्थप्रकाश व अन्य ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये। यह भी जानने योग्य तथ्य है कि ज्ञान से मुक्ति होती है तो अज्ञान से मनुष्य बन्धन मे पड़ कर दुःख उठाता व भोक्ता है। हमारा यही हाल है कि हम अज्ञान में पड़े हुए अपने शुभ व अशुभ कर्मों के फलों, सुख व दुःख, को भोग रहे हैं। ज्ञान को प्राप्त कर तदनुसार कर्म व साधना का अभ्यास करना व मृत्योपरान्त जन्म-मरण से मुक्त हो जाना ही मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य है जो संसार के किसी मत-मतान्तर में प्राप्त नहीं होता। वेद और वैदिक साहित्य ही विज्ञानपूर्वक विश्लेषण कर इसको बताते व पुष्ट करते हैं। इसका कारण सभी मतों का अविद्या व अज्ञान से युक्त, अल्पज्ञ जीवात्माओं द्वारा, मनुष्यों द्वारा प्रचार करना व स्वयं उनके व उनके अनुयायियों द्वारा उन मतों की स्थापना करना रहा है। संसार में वेदतर कोई ऐसी पुस्तक नहीं है जिसमें सभी सत्य विद्यायें सहित सभी विषयों का शत प्रतिशत सत्य ज्ञान हो। इस कसौटी व अपेक्षा पर वेद ही सत्य सिद्ध होते है जिसका एक प्रमुख कारण वेद ज्ञान का सृष्टि के आरम्भ में साक्षात् ईश्वर से उसी के द्वारा उत्पन्न ऋषियों व मनुष्यों में से चार श्रेष्ठ उपमा व संज्ञाधारी ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को उनकी आत्माओं में प्रेरणा द्वारा वेदों का ज्ञान प्रदान किया जाना है। यह भी बता दें कि ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश सहित अपने सभी ग्रन्थों का सृजन वेदों व वैदिक शिक्षाओं का बोध कराने के लिए किया है जो कि सभी मनुष्यों के लिए अमृत तुल्य है।

 ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज की विधिवत् स्थापना सर्वप्रथम मुम्बई के गिरिगांव मुहल्ले में 10 अप्रैल, सन् 1875 की सायं को सभासदों की एक विशेष बैठक में उनके अनेक बार निवेदन करने पर कुछ अवधि तक परस्पर विचार करने के बाद की थी। स्वामी दयानन्द जी उन दिनों देश भर में घूम-घूम कर वैदिक सिद्धान्तों व मान्यताओं का प्रचार करते थे जिसकी प्रेरणा उन्हें अपने गुरु प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती सहित आदि गुरु परमेश्वर व अपनी आत्मा से हुई थी। यह ऐसा प्रचार था जैसा महाभारत काल के बाद न देखा गया और न सुना गया। विद्वतजन इस प्रचार को देख व सुन कर मन्त्रमुग्ध हो जाते थे और उन्हें यह लगता था कि यह ज्ञान की अमृत गंगा इसी प्रकार सदा सर्वदा प्रवाहित होती रहे जिससे देश की पराधीनता, अज्ञानता, सामाजिक विभाजन और निर्धनता आदि इस अग्नि में भस्मसात् हो जाये। इसकी आवश्यकता लोगों द्वारा पहले भी अनुभव की गई होगी परन्तु वेदों के प्रचार के लिए एक संस्था के स्थापित करने का प्रस्ताव उन्हें मुम्बई में ही मिला था और उसके अनुरूप ही 10 अप्रैल, सन् 1875 को यह शुभ कार्य अर्थात् आर्यसमाज की स्थापना हुई। यह दिन न केवल भारत के इतिहास अपितु विश्व के इतिहास में बहुत महत्व रखता है। इस संस्था की स्थापना करते हुए ऋषि दयानन्द ने इसे **‘आर्यसमाज’** नाम दिया गया। आर्य का अर्थ श्रेष्ठ मानव होता है। श्रेष्ठ गुण, कर्म व स्वभाव वाले मानव को आर्य कहते हैं और इनके संगठन को आर्यसमाज कहा जाता है। आर्यसमाज ने अपने विगत 142 वर्षों के इतिहास में जो कार्य किये हैं उसने इस समाज को श्रेष्ठ मानवों का संगठन सिद्ध किया है। संसार में इसके सिद्धान्तों व अतीत के कार्यों के समान कोई दूसरा संगठन नहीं है। हमारा सौभाग्य है कि हम विश्व की इस अद्वितीय श्रेष्ठ संस्था के अनुयायी है।

 आर्यसमाज की स्थापना वेद प्रचार अर्थात् सत्य ज्ञान के प्रचार के लिए की गई थी जिससे देश व संसार के सभी मानवों का कल्याण हो। ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के दस नियम सूत्र बद्ध किये हैं। इनका उल्लेख कर देना उचित प्रतीत होता है। पहला नियम है **‘सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका आदि मूल परिमेश्वर है।’** दूसरा नियम: **ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकत्र्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।,** तीसरा नियमः **वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ना और सुनना-सुनाना सब आर्यों (श्रेष्ठ मनुष्यों का) परम धर्म है। चतुर्थ नियमः सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।, पांचवा नियमः सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।,** छठा नियमः संसार का उपकार करना इस (आर्य) समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।, सातंवा नियमः सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये। आज इस नियम को सरकार द्वारा देश भर में प्रभावी रूप से लागू करने की आवश्यकता है लेकिन हमें लगता है कि वोट बैंक की देश के लिए अहितकर राजनीति के कारण किसी भी दल के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं हो पाता। इसी कारण कश्मीर से हिन्दू पण्डितों को मौत के डर से पलायन करना वा भागना पड़ा और वहां हमारे सैनिक प्रतिदिन मरते रहते हैं जिन्हें मारने में वहां के अलगाववादी नागरिक भी सम्मिलित होते हैं। सरकार वहां के अलगाववादी लोगों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने, कठोर दण्ड देने, में विफल दीखती है। आठवां नियमः **अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये। आर्यसमाज के सभी नियम महत्वपूर्ण हैं परन्तु हमें यह नियम अतीव महत्वपूर्ण लगता है। जिस दिन इस नियम को सर्वांश रूप में स्थापित कर दिया जायेगा उस दिन यह देश व विश्व सुख का धाम बन जायेगा। मत-मतान्तर व उनकी असत्य मान्यतायें इसमें मुख्य रूप से बाधक हैं। यह सभी बाधायें वेद प्रचार से ही दूर हो सकती हैं।** नौंवा नियमः प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। अन्तिम दसवंा नियमः सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें।

 आर्यसमाज की स्थापना सत्य धर्म वा वेद प्रचार करने के लिए हुई थी। यह दोनों उद्देश्य परस्पर पूरक हैं। आर्यसमाज ने देश की आजादी से पूर्व देश की उन्नति के लिए अभूतपूर्व कार्य किया है। ईश्वर का सत्य स्वरूप आर्यसमाज ने ही संसार में स्थापित किया है। ईश्वर उपासना की सत्य विधि भी आर्यसमाज व ऋषि दयानन्द की देन है। अग्निहोत्र यज्ञ के सत्यस्वरूप का पुनरुद्धार व उसका प्रचलन भी आर्यसमाज ने किया। देवता की सही परिभाषा आर्यसमाज की ही देन है। जो जड़ व चेतन पदार्थ अपने अस्तित्व से दूसरों को कुछ देते हैं वह सभी देवता कहलाते हैं। वायु हमें प्राण वायु देने से देवता है तो अग्नि प्रकाश व दाहकता के गुण के कारण देवता है। माता, पिता सन्तान को जन्म देने, पालन पोषण करने व सन्तानों को अच्छे संस्कार देने के कारण से देवता हैं। ईश्वर महादेव इसलिये है कि वह सब देवों का भी आदि देव है। आर्यसमाज ने युवावस्था में विवाह करने का आन्दोलन किया, सती प्रथा का विरोध किया, अस्पश्र्यता का विरोध करने सहित गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित वैदिक वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया। दलितों सहित सबको समान व निःशुल्क वेदों, सभी ग्रन्थों व विषयों की शिक्षा का समर्थन किया। हिन्दी व संस्कृत को उसका उचित स्थान देने की वकालत करने के साथ आन्दोलन किये व गुरुकुल व डीएवी स्कूल एवं कालेज देश भर में स्थापित किये। कम आयु की विधवाओं के पुनर्विवाह का आपदधर्म के रूप में समर्थन किया। अविद्या पर आधारित एवं वेद विरुद्ध मूर्तिपूजा सब प्रकार के पतन का कारण है अतः इसका प्रमाण पुरस्सर विरोध किया। अवतारवाद की मिथ्या मान्यता का खण्डन किया। मृतक श्राद्ध अशास्त्रीय व अनुचित है, इसका भी प्रचार किया। फलित ज्योतिष भी मिथ्या ज्ञान है, इसका प्रचार भी आर्यसमाज करता है। समाज में जन्मना जाति पर आधारित विवाह के स्थान पर गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित विवाहों का समर्थन किया जिसका सुप्रभाव समाज में देखने को मिल रहा है। छुआछूत को समाप्त करने में भी आर्यसमाज की महत्वपवूर्ण भूमिका रही है। आजादी दिलाने व स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी आर्यसमाज का सबसे बड़ा योगदान है। देश में आजादी के आन्दोलन का महौल आर्यसमाज ने ही बनाया। देश को आजाद करने की सबसे पहले मांग महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश व आर्याभिविनय में सन् 1875 व उसके आसपास की थी। इस विषयक उनके अनेक वचन मिलते हैं जो उनकी मृत्यु के षडयन्त्र के वास्तविक कारण बने। ऐसे अनेकानेक देशहितकारी कार्य करने के कारण आर्यसमाज देश की प्रमुख व सर्वोपरि महान् संस्था सिद्ध होती है।

 आर्यसमाज की स्थापना न होती तो आज हमारा देश बेहाल होता। जो ज्ञान विज्ञान की उन्नति आज दीखती है उसकी नींव में हमें आर्यसमाज ही दिखाई देता है। जिस राजनीतिक दल ने आर्यसमाज को जितनी मात्रा में अपनाया वह उतना ही आगे बढ़ रहा है। आर्यसमाज ईश्वर की शिक्षाओं का प्रचार व प्रसार करने वाली एकमात्र वैश्विक संगठन वा संस्था है। यह देश व विश्व में बढ़ेगी तो देश व विश्व आगे बढ़ेगा। विश्व में सर्वत्र सुख व शान्ति स्थापित होगी। अन्य कोई उपाय दिखाई नहीं देता है। आर्यसमाज को अपनाना सभी देश व विश्व के बन्धुओं का कर्तव्य है। सभी आर्यसमाज के अनुयायी बने और अपना व विश्व का कल्याण करें। हम सबको आमंत्रित करते हैं। आर्यसमाज की स्थापना को केन्द्र में रखकर यह लेख देश व सभी बन्धुओं को सादर समर्पित है। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**‘वेद स्वतः प्रमाण धर्म ग्रन्थ और अन्य**

**सभी ग्रन्थ वेदानुकूल होने पर ही प्रमाण’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

मनुष्य का जन्म वाद-विवाद के लिए नहीं अपितु सत्य व असत्य का निर्णय कर सत्य का ग्रहण व उसका पालन करने क लिए हुआ है। सत्य का निर्णय करने का साधन व कसौटी क्या है? इसका उत्तर धर्म व सत्य की जिज्ञासा होने पर ईश्वरीय ज्ञान चार वेद की मन्त्र संहिताओं के सत्यार्थ ही परम प्रमाण हैं। संसार के अन्य सभी मत, पन्थ व इतर विषयों के ग्रन्थ तभी प्रमाण माने जा सकते हैं यदि वह पूर्णतः वेदों के अनुकूल हों तथा प्रतिकूल विचार व मान्यताओं के न हो। इन विचारों को पढ़कर वेद के महत्व से अपरिचित व्यक्ति यह प्रश्न करेगा कि वेदों में ऐसी कौन सी विशेषता है जिसके कारण वेदों को परम प्रमाण होने का गौरव प्राप्त है? इसका विवेक पूर्ण उत्तर ऋषि दयानन्द ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में व अन्यत्र भी दिया है जो सर्वथा उचित एवं माननीय है। इसका संक्षिप्त उत्तर है कि वेद पौरुषेय नहीं अपतिु अपौरुषेय वा ईश्वरकृत ज्ञान है। इसके लिए हमें सृष्टि के आरम्भ में जाकर देखना है कि संसार में ज्ञान की उत्पत्ति कैसे हुई? हम जानते हैं कि सृष्टि में एक नियम कार्य कर रहा है, वह यह कि जिसकी उत्पत्ति होती है उसका अन्त भी अवश्य होता है। हमारी यह सृष्टि जिसमें सूर्य, चन्द्र व पृथिवी एवं इसके सभी पदार्थ नित्य व सनातन नहीं हैं अपितु सुदीर्घ पूर्व काल में बने व रचे गये हैं। इनका रचयिता कोई सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, निराकार, सत्य-चित्त-आनन्दस्वरूप, अनादि, अनुत्पन्न, नित्य, अविनाशी व अमर सत्ता अर्थात् परमात्मा है। चेतन पदार्थ व सत्ता का मुख्य गुण व स्वभाव ज्ञान व कर्म होता है। ज्ञान की संवेदना से विहीन सत्ता जड़ कहलाती है और ज्ञान ग्रहण करने व उसका प्रचार करने वाली सत्ता ही चेतन सत्ता होती है। यह सृष्टि किसी जड़ सत्ता के द्वारा बिना चेतन सत्ता के ज्ञान व सामथ्र्य के बनना असम्भव है। उदाहरण है कि मिट्टी से घड़ा स्वमेव नहीं बनता अपितु कुम्हार के द्वारा बनता है। यदि कुम्हार न हो तो घड़ा तीन काल भूत, वर्तमान व भविष्य में कभी नहीं बन सकता। कुम्हार एक सत्य-चित्त गुणों व स्वभाव से युक्त सत्ता है जिसमें ज्ञान व कर्म करने की शक्ति है और वही मिट्टी से घड़े को बनाता है। इसी प्रकार से संसार के सभी पौरुषेय अर्थात् मनुष्कृत पदार्थ बने हैं। यह सृष्टि मनुष्यकृत न होकर अपौरुषेय अर्थात् किसी महान चेतन सत्ता जिसे ईश्वर कहते हैं, उसके द्वारा बनी सिद्ध होती है। यह सृष्टि बनी है इसी कारण इसकी प्रलय अर्थात् मृत्यु भी होती है और मृत्यु के बाद पुनः इसकी रचना ईश्वर से होती है। संसार में तीन पदार्थ नित्य व अनादि हैं जिनके नाम हैं ईश्वर, जीव व प्रकृति। ईश्वर व जीव चेतन पदार्थ हैं और प्रकृति जड़ है। ईश्वर सर्वव्यापक है, जीव एकदेशी है तथा मूल प्रकृति सूक्ष्म कणों सत्व, रज व तमों गुणों वाली है जो कारण अवस्था में इस ब्रह्माण्ड व आकाश में सर्वत्र फैली हुई विद्यमान रहती है जैसा कि गैस के मामले में होता है। इस प्रकृति से ही ईश्वर सृष्टि के आदि काल में इसकी रचना स्वसामथ्र्य अपने अनन्त नित्य ज्ञान, बल वा शक्ति से कर्ता है। सृष्टि की रचना जीवात्माओं को उनके पूर्व जन्मों व कल्पों में मनुष्य शरीरों में रहकर किये गये भले व बुरे कर्मों का सुख व दुःख रूपी भोग कराने के लिए ईश्वर करता है। सृष्टि की रचना पूर्ण हो जाने पर ईश्वर मनुष्य व अन्य प्राणियों की अमैथुनी सृष्टि करता है। इन सब प्राणियों को अपने जीवन को सुचारू रूप से व्यतीत करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। यह ज्ञान उन आदि काल में उत्पन्न मुनष्यों को जड़ प्रकृति वा सृष्टि से नहीं मिल सकता। इसकी दाता सृष्टि के आरम्भ काल में केवल एक ही सत्ता होती है जो कि ईश्वर है और उसी से वेद रूपी ज्ञान मनुष्यों के अग्रणीय चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा को मिलता है। उन ऋषियों से वेद के पठन पाठन की परम्परा आरम्भ होती है जो ब्रह्मा से आरम्भ होकर आज तक चली आई है।

 वेद ही स्वतः प्रमाण क्यों है? इसका उत्तर है कि वेद एकदेशी अल्पज्ञानी मनुष्यों का ज्ञान न होकर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमान सत्ता ईश्वर का अपना, निज का नित्य ज्ञान है। मनुष्य इस ज्ञान की सहायता से व इसे पढ़कर ही ज्ञानी बनते हैं। यदि यह ज्ञान न दिया जाता तो संसार में कोई भी मनुष्य ज्ञानी नहीं हो सकता था। सृष्टि की आदि में मनुष्यों की उत्पत्ति होने पर उन्हें पहली वस्तु ज्ञान चाहिये। ज्ञान न होने पर वह अपना कोई भी निजी काम नहीं कर सकते और न दूसरों से किसी प्रकार का व्यवहार कर व करा सकते हैं। न किसी की सहायता कर सकते हैं और न सहायता ले सकते हैं। बिना भाषा व ज्ञान के वह आपस में बातचीत व स्वयं में चिन्तन मनन अर्थात् सोच विचार भी नहीं कर सकते। ईश्वर से ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद उन मनुष्यों की सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि ज्ञान भाषा में निहित होता है। यदि भाषा न हो तो ज्ञान हो ही नहीं सकता। अतः पहले भाषा व ज्ञान, यह दोनों कार्य एक साथ होने आवश्यक हैं। ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को एक-एक वेद का ज्ञान दिया था। ज्ञान भाषा में ही दिया जा सकता है अतः वेदों की भाषा भी साथ साथ उन ऋषियों को दी गई थी। चार ऋषियों ने ब्रह्माजी व अन्य सभी मनुष्यों को पढ़ाया। आरम्भिक ईश्वरीय सृष्टि होने के कारण उन्होंने सभी बातों को अल्प समय में ही सीख लिया था इसका अनुमान होता है। वर्तमान जीवन में हम सब यह भी जानते हैं कि जब किसी निर्माता कम्पनी के किसी नए उत्पाद की लांचिंग की जाती है तो उसकी गुणवत्ता व मूल्य पर विशेष ध्यान दिया जाता है। गुणवत्ता अधिक व मूल्य कम रखा जाता है। अन्य कई रियायतें भी दी जाती हैं जिससे की उनका उत्पाद लोगों में शीध्रातिशीध्र लोकप्रिय हो जाये। ईश्वर ने भी आरम्भिक ईश्वरीय सृष्टि में लोगों के शरीर व बुद्धि उत्तम बनाये थे जिनमें ज्ञान को ग्रहण कर उसे स्मरण रखने की क्षमता आज के मानवों से कहीं अधिक थी, ऐसा अनुमान होता है। किसी भी उत्पाद के विषय में जिस प्रकार उस कम्पनी का अधिकारिक कार्यप्रणाली विषयक पुस्तक वा मैनुअल अधिक लाभप्रद होता है उसी प्रकार से इस सृष्टि को रचने वाले ईश्वर का वेद ही एकमात्र ज्ञान है जो उसने मनुष्य को मार्गदर्शन एवं सत्य व असत्य का विवेक करने के लिए दिया है। अन्य ज्ञान व विचार उसी की देन व नकल हैं। ज्ञान का आधार व बीज वेद है। अतः वेद ही धर्म ग्रन्थ व वेद ही ज्ञान की दृष्टि से सर्वाधिक प्रमाणिक ग्रन्थ हैं। अन्य मत-मतान्तर व इतर ग्रन्थों में जो ज्ञान है वह भी सृष्टि में परम्परा व प्रवाह सहित वेद ज्ञान युक्त लोगों के चिन्तन व वेदों की सुप्त प्रसुप्त चिन्तनधारा व परवर्ती लोगों के मौन रखकर विषय का ध्यान कर उसमें खा जाने वा एकाकार हो जाने पर ही आया है। उसमें विद्यायुक्त बातें तो सभी वेदों की हैं और अज्ञानता की बातें उन्हें बताने व लेखबद्ध करने वालों की अल्पज्ञता व स्वार्थ बुद्धि के कारण हो सकती हैं। ऋषि दयानन्द भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे और यह बाद उचित भी लगती है।

 ऋषि दयानन्द, उनके बाद आर्यसमाज के विद्वानों व हम जो बातें करते हैं वह वेदों पर आधारित होने से ही महत्वपूर्ण हैं। यदि हमें वेद उपलब्ध होने सहित उनके सत्यार्थ उपलब्ध न होते तो हम ईश्वर व जीवात्मा आदि के विषय में ऐसी प्रमाणिक बातें न कह पाते। वेदेतर ग्रन्थ स्मृति, दर्शन, उपनिषद आदि में भी जो बातें कहीं गईं हैं वह भी ऋषियों ने वेदाध्ययन कर योगनिष्ठ होकर लिखी हैं। अब विचार कीजिए कि महाभारतकाल के बाद समयान्तर पर वेदों के विलुप्त व उनके यथार्थ अर्थ का ज्ञान न होने के कारण संसार में अंधकार फैला। ऐसी अवस्था में ही सभी मत-मतान्तर उत्पन्न हुए। वेद से सर्वथा दूर अर्थात् वेदों के ज्ञान से रहित इन मतों के आचार्यों ने अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार ही अपने मत चलाये व धर्मग्रन्थ व अन्य ग्रन्थों की रचना की जिसमें अविद्या व अज्ञान की अनेक बातें पाईं जाती हैं। आश्चर्य है कि किसी भी मत का कोई व्यक्ति अपने ग्रन्थों की मान्यताओं की सत्यता की पुष्टि पर कभी विचार नहीं करता और अपने मृतक आचार्यों के एक-एक शब्द को प्रामाणिक मानकर विवाद करते हैं, भले ही उनके अनुयायियों को उनसे कितना भी दुःख व कठिनाई क्यों न होती हो। इस प्रकार की कमियां ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में इस कारण नहीं हैं कि वह वेद व्याकरण पढ़कर व साथ हि सच्चे व सिद्ध योगी बनकर वेदों के सत्य व यथार्थ अर्थों को जानने में समर्थ हुए थे। इस कारण उनके ग्रन्थों सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, आर्याभिविनय, संस्कारविधि आदि में जो कथन व बातें हैं वह सब वेदानुकूल होने के कारण सत्य व प्रमाणिक हैं। इसी कारण अन्य मतों में वैदिक धर्म के सत्य सिद्धान्तों के कारण खलबली मची है। इससे उनके बुरे मंसूबे धराशायी हुए हैं। यह ऐसा युग है जिसमें सबको धर्म विषय में स्वेच्छाचार की अनुमति है। मुगलों व अंग्रेजों के भारत में आने के बाद उन्होंने धर्म की गुणवत्ता नहीं अपितु अपने स्वेच्छाचार से इस देश के आर्य हिन्दुओं, निर्धनों व असहायों का भय व प्रलोभन आदि नाना अमानवीय तरीकों से धर्मान्तण किया परन्तु आज भी इसे कहीं बुरा नहीं कहा जाता। इससे ज्ञात होता है कि आज भी हमारा समाज सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए उद्यत नहीं है। वर्तमान स्थिति देखकर तो ऐसा लगता है कि आगे भी ऐसा ही चलेगा और ऐसा भी हो सकता है पूर्ण सत्य पर आधारित वैदिक धर्म कभी आसुरी शक्तियों का शिकार न बन जाये जैसा कि आजकल आतंकवाद के कारण होने की संभावना है।

 हमने वेद के स्वतः प्रमाण होने के विषय में विचार किया है जिसका प्रमाण स्वयं वेद है। सूर्य का प्रमाण जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश आदि गुणों से होता है उसी प्रकार वेद का ईश्वरीय ज्ञान होने का प्रमाण वेदों की अन्तःसाक्षी व ज्ञान से होता है। ऋषि दयानन्द का ग्रन्थ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एवं वेदभाष्य वेद ज्ञान के ईश्वरकृत होने का प्रमाण है। हम सभी पाठकों से आग्रह करेंगे कि वह सत्य व असत्य के विवेक के लिए ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित वेदभाष्य का अध्ययन अवश्य करें। इसी से उन्हें सत्य ज्ञान की प्राप्ति होगी। मिथ्या मतों का भी ज्ञान होगा। ज्ञान से ही जीवात्मा की दुःखों से मुक्ति होती है। वेदाध्ययन व योग रीति से ईश्वर की उपासना उन्हें ईश्वर व मुक्ति प्रदान करा सकती है। अन्य कोई मार्ग नहीं है। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**‘डा. भीमराव अम्बेदकर को उनके पूर्व जन्म के महान्**

**संस्कारों ने देश में उच्च स्थान प्राप्त कराया’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

डा. अम्बेदकर जी के जन्म दिवस 14 अप्रैल को 4 दिन व्यतीत हो चुके हैं। उस दिन हम उन पर कुछ लिखना चाहते थे परन्तु लिख नहीं सके। हमारा मानना है कि किसी महापुरुष के जीवन पर चिन्तन करना केवल जन्म दिन व पुण्य तिथि पर ही उचित नहीं होता अपितु हमें यदा कदा ऐसा करते रहना चाहिये और उनके जीवन की कुछ अच्छी बातों को जानकर उसे अपने जीवन मे धारण करना चाहिये। यदि ऐसा नहीं करते तो उस महापुरुष का जन्म दिवस मनाना सार्थक नहीं होता। कई लोग स्वार्थवश भी उनका यशोगान करते हैं जबकि उन लोगों का जीवन व कार्य डा. अम्बेडकर जी के जीवन व शिक्षाओं के अनुरूप प्रतीत नहीं होता। डा. अम्बेडकर को कहीं से कोई आरक्षण प्राप्त नहीं हुआ था फिर भी उन्होंने चारित्रिक गुणों व पुरुषार्थ से अपने जीवन की भौतिक उन्नति में यश व सफलतायें अर्जित की थी। यदि वह अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में सफलता एवं देश की उन्नति में उल्लेखनीय योगदान कर सकते थे तो आज उनके अनुयायियों को, जिन्हें उनसे कहीं अधिक सुविधायें प्राप्त हैं, उनके जीवन की ऊंचाईयों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये परन्तु ऐसा दिखाई नहीं दे रहा है। उनके सभी अनुयायियों को उन जैसा न बन पाने के प्रश्न का उत्तर ढूंढना चाहिये जिससे वह उनके समान बन सके और उनके आन्दोलन व कार्यों को आगे बढ़ा सके।

 डा. अम्बेडकर जी ने अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में जीवनयापन व शिक्षा प्राप्त की। डा. अम्बेडकर इस जन्म में अत्यन्त उच्च संस्कारों को लेकर जन्में थे। वह उच्च शिक्षा के लिए विदेशों में भी गये। बड़ोदा और कोल्हापुर के आर्य नरेशों ने उनको सहयोग भी किया जिससे उनकी प्रतिभा के विकास में सहायता मिली। इस प्रकार डा. अम्बेडकर ऋषि दयानन्द जी से भी जुड़ जाते हैं क्योंकि इन दो नरेशों में अपने निर्णय लेने में कहीं न कहीं ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की विचारधारा कार्य करती थी। हमें ज्ञात नहीं है कि डा. अम्बेडकर जी ने कभी कहीं ऋषि दयानन्द जी की आलोचना की है जैसी कुछ अहंकारी नेताओं ने अपनी अल्पज्ञता से की है। इसलिए भी डा. अम्बेडकर हम सब आर्यसमाजियों के लिए विचारणीय हैं। जिस निर्धनता और छुआछूत या अस्पर्शयता का दंश उन्होंने बचपन से सम्भवतः अन्तिम दिनों तक झेला, वह हमें कष्ट देती है। काश हिन्दू समाज में स्वामी दयानन्द से पूर्व उन जैसे योग्य महात्मा व धर्मात्मा हुए होते तो जातिवाद व छुआछूत का महारोग आर्य हिन्दू जाति में संक्रमित न हुआ होता। आज भी जन्मना जातिवाद और अल्प मात्रा में छुआछूत का रोग हिन्दू समाज से समाप्त नहीं हुआ है। आज के अनेक सुशिक्षित लोगों में भी इस जन्मना जातिवाद के अंश पाये जाते हैं। न केवल उच्च सामाजिक उन्नत लोगों में अपितु दलितों में भी अपनी जाति को लेकर उच्च व नीच की भावनायें हमने अपने जीवन में अनुभव की है। सभी धर्मों व मतों के आचार्यों को मिलकर इसको दग्धबीज करना चाहिये परन्तु हमें लगता है कि आज का युग ऐसे कार्य करने का नहीं है। आज तो सभी आधुनिकता की चकाचैंध से प्रभावित होकर उस आधुनिकता के प्रकाश को पाने के लिए दौड़ लगाते हुए दीख रहे हैं। यह स्थिति बदलनी चाहिये। हम स्वच्छता की बात करते हैं तो इसके लिए हमें सबसे पहले अपनी आत्मा व मनों को स्वच्छ बनाना होगा जो कि आज नहीं है। हमें मानव मानव में सभी प्रकार के अज्ञानता पर आधारित कृत्रिम वेद विरुद्ध भेदभावों को समाप्त कर एक ईश्वर की समान विधि से स्तुति, प्रार्थना व उपासना सहित एक भाषा, एक जैसी अनुभूति, एक भावना, सहानुभूति व सहयोग का वातावरण बनाकर समाज से अविद्या व दुःखों को पूर्णतः दूर करने का प्रयास करना चाहिये।

 छुआछूत के अनुचित एवं निन्दनीय होने का विचार आज हमारे मन में आया है। वह यह कि हम सब प्राणियों की जीवात्मा एकदेशी है और ईश्वर सर्वव्यापक है। ईश्वर सर्वशुद्ध, पवित्र और सबका मंगल चाहने व करने वाला है। हम यह भी जानते हैं कि ईश्वर सर्वातिसूक्ष्म होने से सब आत्माओं व उनके शरीरों के एक एक परमाणु व परमाणुओं के भीतर इलेक्ट्रोन व प्रोटोन आदि कणों में भी व्यापक है। अतः जब परम पवित्र ईश्वर हर समय सभी मनुष्य एवं इतर प्राणियों की आत्माओं व शरीरों में व्याप्त रहकर भी अपवित्र नहीं होता तो मनुष्य किसी को छू लेने, उसके हाथ से जल पीने व भोजन करने, उससे मित्रता व सभी प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों को बनाने से अपवित्र कैसे हो सकता है? अर्थात् कभी नहीं हो सकता। यदि होता है तो ईश्वर तो हमसे कहीं अधिक अपवित्र होता है। अतः इसे यथार्थ रूप में जानकर जन्मना जातिवाद व छुआछूत का सबको पूर्णतः त्याग करना चाहिये। हमें तो छुआछूत का व्यवहार छुआछूत मानने वालों का मानसिक रोग, अविद्या वा मूर्खता ही प्रतीत होती है। जो ऐसा करते हैं वह घोर अविद्याग्रस्त हैं। उनके साथ उनके वह आचार्य जो उनकी इस अविद्या को बढ़ाते हैं व दूर करने का प्रयास नहीं करते, वह भी उनसे अधिक दोषी प्रतीत होते हैं न केवल समाज के ही अपितु ईश्वर के भी। क्या ईश्वर जन्मना जातिवाद व छुआछूत मानने वाले लोगों को पसन्द कर सकता है, कदापि कदापि नहीं। ईश्वर ने वेदों में स्वयं कहा है कि मैं इस जड़, चेतन जगत में व्यापक हूं। हे मनुष्य, तू इस बात को जान। इसे जानकर तू सबके प्रति अच्छा व्यवहार कर। बुराईयों व दुराचरणों को छोड़ दें। त्याग पूर्वक भोगों का भोग कर। यह धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य किसी मनुष्य का नहीं है। यह सब धन परमात्मा का है इसलिये यहीं रह जाता है। मृत्यु होने पर किसी धनवान मनुष्य के साथ नहीं जाता। अनेक धनवान मनुष्य तो धन के कारण ही हत्या तक के शिकार हो जाते हैं। यह धन उनकी रक्षा नहीं करता जिसकी रक्षा उन्होंने अपने जीवन काल में की होती है। ऐसे लोगों के कारण ही मोदी जी को नोट बन्दी करनी पड़ी थी। यदि काला धन के स्वामी अपने धन को परोपकार व दु,िखयों की सेवा में व्यय करते तो उससे उन्हें यश व कीर्ति प्राप्त होती व परजन्म सुधरता। अस्तु। यहां वेदों में अपरिग्रह की शिक्षा व उपदेश दिया गया है परन्तु आज का शिक्षित जगत भी जीवन भर परिग्रह में ही लगा रहता है। उसे अपनी मृत्यु और उसके बाद इस जन्म के कर्मों के आधार पर मिलने वाले सुख व दुखों की कोई परवाह ही नहीं है। उसके धार्मिक आचार्य भी उसे इससे दूर रखने के कारण उसके अपराधी ही सिद्ध होते हैं। ऋषि दयानन्द जी को इसकी चिन्ता थी। इसलिए उन्होंने सभी मनुष्यों को सच्ची उपासना पद्धति दी, अग्निहोत्र यज्ञ का विधान दिया और साथ ही पितृ यज्ञ, अतिथि यज्ञ एवं बलिवैश्वदेव यज्ञ का भी विधान कर उसको आचरण में लाने को कहा जिससे कि मनुष्य का परजन्म सुधरता है। ऋषि दयानन्द का समस्त चिन्तन सत्य को स्वीकार करने व असत्य का त्याग करने के साथ अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि कराने वाला है जबकि अन्य किसी मत में यह विचार व भावना परिलक्षित नहीं होती। डा. अम्बेडकर जी भी अपने सद्गुणों के कारण महापुरुष बने न कि धन सम्पदा के कारण। अतः सभी को सद्गुणों का ही संग्रह करना चाहिये जो सदा साथ में रहे।

 डा. अम्बेदकर जी ने अपने समय में प्रचलित उच्च शिक्षा (एमए, पीएचडी, एमएससी, डीएससी, बैरिस्टर-एट-ला, एलएलडी एवं डी.लिट.) प्राप्त की और देश व समाज के उत्थान में भारत के प्रथम कानून मंत्री बनकर एक आग्नेय नेता की विशेष भूमिका वहन की। संविधान का प्रारुप तैयार करने वाली समिति के आप अध्यक्ष थे। अनेक विषयों पर आपके प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू से विचार नहीं मिलते थे। इससे उनके स्वतन्त्र चिन्तन और देशहित की उच्च भावनाओं का पता चलता है। यदि डा. अम्बेडकर जी की सभी उचित बातों को मान लिया जाता तो आज देश का सामाजिक स्वरूप कहीं अधिक समरसता लिए हुए होता। अर्थशास्त्र में आपने शोध उपाधि, पीएचडी, डीएससी, डीलिट आदि, प्राप्त कीं थी। आपने अर्थशास्त्र विषयक अनेक ग्रन्थों का निर्माण भी किया है। डा. अम्बेडकर के जीवन में यह भी ज्ञात होता है कि वह दलगत राजनीति वा देश का अहित करने वाले विषयों से बहुत ऊपर उठे हुए थे। वह किसी दल व मत के प्रलोभन में नहीं आये। उन्होंने देश व हिन्दू हितों का भी ध्यान रखा जबकि हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था से वह गहराई से आहत थे। उन्हें अपने बचपन व युवावस्था में सामाजिक और आर्थिक न्याय नहीं मिला। यदि हिन्दुओं में जातिवाद, छुआछूत, ऊंच-नीच, अगड़े-पिछड़े की विचारधारा न होती तो डा. अम्बेडकर जी बहुत अधिक उन्नति करते और देश का स्वरूप कहीं अधिक अच्छा बन सकता था। हमें उनके जीवन का मुख्य सन्देश यही लगता है कि हम जन्मना जातिवाद की व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंके। जन्मना जाति के सूचक शब्द का बहिष्कार हो और यह शासन के आदेश से प्रबन्धित होने चाहिये। इसके साथ ही हमें अधिक से अधिक विद्या अर्जित कर, दुराचरणों से दूर रहकर, देश व समाज की उन्नति में स्वय को सर्वात्मा समर्पित करना चाहिये। हमें डा. अम्बेडकर जी की यह बात भी आकर्षित एवं प्रभावित करती है कि उन्होंने हिन्दू समाज की जातिगत व्यवस्था से त्रस्त होने पर भी उसी मत की एक शाखा बौद्धमत को चुना। वह चाहते तो वैदिक धर्म के अन्तर्गत आर्यमत वा आर्यसमाज को भी चुन सकते थे। इसका कारण यह हो सकता है कि वह अपने सार्वजनिक जीवन में इतने अधिक व्यस्त थे कि वह व्यस्तता के कारण ऋषि दयानन्द के साहित्य को पूर्णतः पढ़ नहीं सके। यदि उन्होंने उनके सभी ग्रन्थों वा विचारधारा को यथार्थ रूप से जाना होता तो देश व समाज के लिए बहुत उत्तम होता। बौद्ध मत स्वीकार कर भी उन्होंने हिन्दुओं को दलितों के प्रति अपने व्यवहार को ठीक करने व जन्मना जाति व्यवस्था को समाप्त करने का संकेत ही दिया प्रतीत होता है। डा. अम्बेडकर जी ने जो समाज व देशहित के कार्य किये उसके लिए देश व समाज उनका ऋणी है। उनको अपना मसीहा मानने वालों को उनके आदर्शों को अपने जीवन में धारण करने के साथ देश व समाज को जोड़ने और राष्ट्र विरोधी शक्तियों से लोहा लेने में अपनी सक्रिय भूमिका निभानी चाहिये। हम डा. अम्बेडकर जी को उनके सभी शुभ कार्यों के लिए नमन करते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**‘यज्ञ व संस्कार कराने वाले हमारे पुरोहित तथा उनकी दक्षिणा’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 पुरोहित उस व्यक्ति को कहते हैं जो देश व समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हित की भावना से कार्य करता हे। इसके लिए पुरोहित को अपने उद्देश्य का पता होना चाहिये और उसके साधनों का ज्ञान भी होना चाहिये। वह विद्वान एवं पुरुषार्थी होना चाहिये और चारित्रिक बल का धनी हो। विद्वान शब्द का अर्थ ही हम यह समझते हैं कि वह वेदों की शिक्षाओं व ज्ञान से पूरी तरह से परिचित हो व उसका दैनिक स्वाध्याय करता हो। इस श्रेणी में हमारे सारे ऋषि, सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले सच्चे योगी, सभी त्यागी व निर्लोभी सामाजिक नेता और घरों में वेदानुसार संस्कार और यज्ञ अग्निहोत्र वा पूजा पाठ कराने वाले पण्डित व पुरोहित भी आते हैं। ऋग्वेद का पहला मन्त्र **‘अग्नि मीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।’** है। इस मन्त्र में ईश्वर को सभी जीवों का पूर्ण हित करने के कारण पुरोहित कहा गया है। अतः पुरोहित वह व्यक्ति होता है जो भावनात्मक व अपने कामों से लोभ रहित होकर दूसरों का हित करता है।

 आजकल पुरोहित शब्द घरों व परिवारों में संस्कार, पूजा पाठ व अनेक अवसरों पर यज्ञ अग्निहोत्र कराने वाले विज्ञ व्यक्तियों पर प्रयोग में लाया जाता हैं। पुरोहित ही यज्ञ का ब्रह्मा भी कहा जाता है। जब किसी को संस्कार आदि कराना होता होता है तो वह आर्यसमाज के पुरोहित को अपने निवास व संस्कार आदि के स्थान पर आमंत्रित करते है। पुरोहित जी उन्हें आवश्यकतानुसार यज्ञ कुण्ड, समिधायें, घृत, हवन सामग्री, यज्ञ के पात्र आदि बता देते हैं जिनका प्रबन्ध यजमान व यज्ञ करवाने वाले महानुभाव को करना होता है। पुरोहित की दक्षिणा भी यज्ञ का मुख्य अंग होती है। आजकल पुरोहित का जीवन उसे प्राप्त होने वाली दक्षिणा पर ही निर्भर होता है। यदि उन्हें उचित मात्रा में दक्षिणा न दी जाये तो उनका जीवन निर्वाह होना कठिन होता है। अधिकांश लोग उन्हें कम दक्षिणा देते हैं व देना चाहते हैं जिससे उनका जीवन साधारण कोटि का होता है। दूसरों को देखकर उनमें साधरण मनुष्यों की भांति लोभ की प्रवृत्ति भी उत्पन्न होती है। आजकल निर्लोभी पुरोहित जी का मिलना हमें दुलर्भ ही लगता है। पुरोहित जी जानते हैं कि कौन यजमान किस आर्थिक स्थिति का है। विवाह पर तो आजकल बहुत अधिक दक्षिणा ली जाती है। अनेक स्थानों पर पुरोहित व कन्या व वर के पिता को परस्पर लड़ते झगड़ते भी देखा है। उसमें पुरोहित पुरोहित पक्ष की कुछ बातें उचित भी होती हैं। एक रोचक घटना याद आ गई। सन् 1976 में हम अपने एक सहपाठी मित्र श्री महेन्द्र सिंह के विवाह संस्कार में बिजनौर के वुडगरा ग्राम में सम्मिलित हुए थे। हमारे आर्य विद्वान श्री रूपचन्द्र दीपक, लखनऊ इसी गांव के हैं। संस्कार सम्पन्न होने पर वर पक्ष के पिता ने पण्डित जी को दक्षिणा दी तो पण्डित जी ने कुछ और धनराशि देने को कहा। इस पर वर के पिता बोले कि दक्षिणा की राशि किस शास्त्र में लिखी है, तो पण्डित जी ने विनम्रता से उत्तर दिया कि आपने जो दहेज की मांग की और नगद धन मेरी उपस्थिति में लिया, वह किस शास्त्र के वचनों के आधार पर लिया? यह सुन कर वर के पिता को कुछ अधिक धन पण्डित जी को देना पड़ा। एक अन्य घटना भी याद आ रही है। हमारे देहरादून के एक आर्यमित्र के पुत्र का विवाह संस्कार हमारे एक परिचित आर्य पुरोहित जी पं. वेदश्रवा ने रात्रि समय में कराया। संस्कार के बाद उनको दक्षिणा दी गई जो उन्हें कम लगी। उन्होंने हमसे प्रश्न किया कि इन महाशय ने आरकेस्ट्रा और बैण्ड बाजें वालों को जो हजारों रूपये की दक्षिणा दी उन्होंने क्या विवाह कराया? फिर मुझे उनसे बहुत कम दक्षिणा क्यों दी जबकि विवाह तो मैंने ही कराया है। हमने उनकी बात का समर्थन तो किया परन्तु हम कुछ करने व कहने में असमर्थ थे। हमने देखा कि देर रात्रि वर और वधू के पिता भोजन कर रहे थे। पुरोहित जी उनके पास गये। अपने तर्क दिये, वर के पिता ने अपना बटुआ निकाला और कुछ धन पुरोहित जी को दिया। पुरोहित जी ने तब अधिक कुछ नहीं कहा, जो दिया ले लिया और चले गये। ऐसी घटनायें हमारे पुरोहितों के जीवन में घटती रहती हैं। ऐसे भी संस्मरण है कि हमारे कहने पर एक पुरोहित जी ने हमारे किसी परिचित मित्र के माता-पिता के देहान्त के अवसर पर प्रति दिन 10 किमी. दूर उनके निवास पर जाकर कई दिनों तक यज्ञ कराया। अन्तिम दिन यजमान महोदय द्वारा दक्षिणा उन्हें दी गई। हमने देखा की दक्षिणा कम है तो हमने बाद में अपनी ओर से कुछ धनराशि पण्डित जी को प्रदान की जबकि पहले व बाद में पण्डित जी ने हमें कोई शिकायत नहीं की थी। अपने मित्र को तो हम कुछ कह नहीं सकते थे। ऐसे कुछ उदाहरण हमारे जीवन में और भी हैं। अस्तु।

अनेक पुरोहित दक्षिणा पहले ही तय करने व कम मिलने पर यजमान को और अधिक देने को कहने को उचित भी ठहराते हैं और अनेक हेतु देते हैं। यह उचित भी हो सकता है परन्तु हर स्थिति में नहीं होता, ऐसा हम अनुभव करते हैं। हमने देखा है कि ऐसे बहुत से लोग होते हैं जो ऋण लेकर अपने कार्य करते हैं। हमने अपने कार्यालय में ही देखा है कि जब भी किसी मित्र परिवार में विवाह आदि होता है तो वह अपने प्राविडेण्ट फण्ड से धन निकालता है। कई लोगों से अपने मित्रों से भी धन लेते देते देखा है। सभी की आर्थिक स्थिति एक समान तो होती नहीं है। उचित मात्रा में दक्षिणा को उचित ही कहा जायेगा परन्तु जब कुछ घण्टों के यज्ञ कराने के कई कई हजार रूपये और अनेक प्रकार का सामान वह लेते व मांगते हैं तो कई बार यजमान आतिथेय को बुरा भी लगता है। हमने एक स्मृतिशेष आर्य भजनोपदेशक को देहरादून के एक पुरोहित सम्मेलन में बोलते हुए सुना है जिसमें उन्होंने पुरोहितों की दशा का चित्रण किया था। इस सम्मेलन में डा. रघुवीर वेदालंकार जी ने कहा था कि पुरोहित के पास उतना धन होना चाहिये कि जितना यजमान के पास है। विद्वान व अपरिग्रही पुरोहितों के बारे में तो यह बात उचित हो सकती है परन्तु इससे यह सम्भावना बनती है कि यदि दक्षिणा अधिक होगी तो पुरोहितों में आलस्य व प्रमाद आ सकते हैं और वर्तमान में समाज में जो यज्ञ एवं संस्कार आदि थोड़े बहुत होते हैं वह और कम हो जायेंगे। वैदिक धर्म का प्रचार भी बाधित हो सकता है।

 प्राचीन काल में हमारे राज परिवार के लोग ऋषियों, विद्वानों व आचार्यों को गौ व धन आदि के रूप में भारी भरकम दक्षिणा दिया करते थे, ऐसी आम धारणा है। मुण्डकोपनिषद में भी गोदान के बारे में कहा गया है। राजा जनक एवं ऋषि याज्ञवल्क्य जी का प्रसंग, जिसमें स्वर्णमंडित सींगो वाली बहुत सारी गाय ऋषि को दिये जाने का वर्णन आता है, भी पढ़ने को मिलता है। शिवाजी के राज्याभिषेक में भी भारी व्यय किया गया था। इसका बहुत बड़ा भाग भी दक्षिणा में व्यय हुआ होगा। महर्षि दयानन्द के पूर्वज भी उत्तर भारत से जाकर गुजरात में बसे थे। उनको भी वहां राजपरिवार से बड़ी मात्रा में भूमि व प्रचुर द्रव्य आदि दिये गये थे। अतः योग्य पुरोहित को जितनी भी दक्षिणा दी जाये वह उचित है परन्तु वह उसका सदुपयोग धर्म संवर्धन कार्यों में करें, दुरुपयोग न करे। इसके विपरीत आजकल आर्यसमाज के पुरोहित अपनी इच्छानुसार दक्षिणा मांगते हैं। इससे बहुत से लोग तो घर में पुरोहितों से यज्ञ कराने में डरते हैं। दक्षिणा लेते हुए एक ओर जहां पुरोहित जी को अपने पौरोहित्य कर्म के समय सहित यजमान की आर्थिक व्यवस्था का ध्यान होना चाहिये वहीं यजमान को भी देश काल परिस्थिति के अनुसार उचित दक्षिणा पुरोहित जी को देनी चाहिये। हमें भी जीवन में अपने कुछ परिचित आर्य व इतर मित्रों के यहां आपसी सम्बन्धों के कारण यज्ञ कराने के अनेक अवसर मिले हैं। हमने प्रायः सभी अवसरों पर दक्षिणा न देने का विनम्र अनुरोध किया है तथापि हमें आग्रह पूर्वक दक्षिणा मिलती रही है। पुरोहित जी दक्षिणा कुछ अधिक होती है। अभी कुछ ही दिन पहले ही हमें एक ऋषिभक्त आर्य विद्वान के साधन सम्पन्न पुत्र से पुरोहितों की दक्षिणा के बारे में चर्चा करने का अवसर मिला। उन्होंने बताया कि उन्होंने जब पहली बार एक आर्य पुरोहित को किसी यज्ञ के लिए बुलाया तो उन्होंने हमें कार्य सम्पादन से पहले ही दक्षिणा की राशि सूचित कर दी। हमें यह बुरा लगा। उन्होंने बताया कि उन्होंने उससे कहीं अधिक दक्षिणा देने का विचार कर रखा था। वही पुरोहित आज भी उनके यहां यज्ञ कराते हैं और अब वह बात समाप्त हो चुकी है। यज्ञ से पूर्व दक्षिणा तय करने की स्मृति का वह शूल उन्हें आज भी कष्ट देता है, इसी कारण उन्होंने वह बात हमसे साझा की है। यह पुरोहित जी हमारे अति प्रिय मित्रों में है। हम दोनों एक दूसरे का परस्पर सम्मान करते हैं।

 अंग्रेजी पत्रिका वैदिक थाट्स के सम्पादक महोदय से हमारा काफी समय तक सम्पर्क रहा है। जब भी हमने यज्ञों पर कोई लेख लिखा तो उन महोदय ने यज्ञ के महत्व पर अपनी असहमति जताई। उनका आशय यह लगा कि हमारे गुरुकुलों के जो स्नातक पुरोहित बन जाते हैं वह यजमानों से मनमानी दक्षिणा लेते हैं जिससे आर्यसमाज के प्रचार के स्थान पर अप्रचार अधिक होता है। हमने उन्हें समझाने की कोशिश की कि यज्ञ और दक्षिणा दो अलग अलग चीजें हैं। इन्हें जोड़िये मत। जो व्यक्ति वा पुरोहित यजमान की भावनाओं को ठेस व दुःख पहुंचा कर दान व दक्षिणा लेता है, वह गलत हो सकता हैे परन्तु यज्ञ का यथार्थ स्वरूप मनुष्य के लिए बहुत कल्याणकारी है जिसका लाभ प्रत्यक्ष रूप से इस जन्म में तो होता ही है, भावी जन्मों में भी मिलता है। इसी विषय को लेकर हमारे उनसे विचार नहीं मिले और हमारा सम्बन्ध विच्छेद हो गया। आज भी वह अपनी पत्रिका की प्रति इमेल पर भेज देते हैं। वह है ंतो ऋषि को मानने वाले परन्तु कुछ गुरुकुलीय पुरोहितों के आचरणों के कारण वह यज्ञ के ही आलोचक बन गये हैं। हमारे पुरोहितों व विद्वानों को इस पर ध्यान देना चाहिये।

 हमें यह लेख इस कारण लिखना पड़ा कि एक ऋषिभक्त परिवार के एक महीनय व्यक्ति ने एक आर्य पुरोहित द्वारा यज्ञ वा संस्कार से पूर्व अपनी दक्षिणा निर्धारित करने की पूर्वानुभूत दुःख वा टीस से हमें अ वगत कराया। हमें आर्यनेता कीर्तिशेष श्री देवरत्न आर्य के यशस्वी पिता आचार्य भ्रदसेन जी के जीवन का एक प्रसंग भी याद आ रहा है। वह एकबार एक ऐसी माता की पुत्री के घर विवाह संस्कार कराने पहुंचे जो अति निर्धनता का जीवन व्यतीत करती थी। उस माता ने उन्हें बिना मांगे दक्षिणा दी जो उस समय के हिसाब से पर्याप्त अधिक थी। उन्होंने उस दक्षिणा की धनराशि को उनकी विवाहित पुत्री को भेंट में दे दिया और अपनी ओर से भी कुछ सहयोग राशि दी। इसका वर्णन प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने उनके जीवन चरित्र में किया है। काश हमारे सभी पुरोहित आचार्य भद्रसेन जी के जीवन से शिक्षा लें। पुरोहित कर्म अन्य व्यवसायों जैसा व्यवसाय नहीं है। यह धर्म कार्य है। इसमें त्यागी व तपस्वी तथा निर्लोभी लोगों को ही पुरोहित होना चाहिये। तप व अभाव तो उन्हें झेलना पड़ ही सकता है। महत्वांकाक्षी लोगों को पुरोहित जैसे महीन एवं पवित्र कार्य को करने वाला नहीं बनना चाहिये। यज्ञ कराने वाला तो दक्षिणा देगा ही, वह कम व अधिक हो सकती हैं। यदि पुरोहित जी उसमें सन्तोष कर लेते हैं तो उत्तम है। यदि कहीं से दक्षिणा कम मिलती तो तो परमात्मा, पुरोहित की पात्रता के अनुसार, कहीं से अधिक भी दिला सकते हंै। इसलिए हमारे सभी पुरोहितों का व्यवहार धर्म के अनुरूप हो जिससे किसी की भावनाओं को न तो ठेस लीगे और न आर्यसमाज की हानि हो। पुरोहित को यह भी ध्यान रखना चाहिये कि उनका कार्य बहुत सम्माननीय कार्य है। अधिक दक्षिणा मांगने से उस पुरोहित का सम्मान घटना है। हमारे विद्वान व सभायें भी विचार कर इस विषय में कुछ निर्देश पुरोहित वर्ग को दे सकती हैं। अन्य विद्वान भी इस विषय में लेख लिखें जिससे पाठकों को जानकारी मिले और एक राय बन सके। पुरोहित भी लेख लिखकर अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं। ओ३म् शम्।

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**